THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-05-17

Re-election of Hassan Rouhani is a welcome move

The re-election of Iranian President Hassan Rouhani in a decisive electoral victory is a welcome development for Iran, India and the world in general. Rouhani secured 57 per cent of the vote against the 38.5 per cent garnered by his opponent, the hardline cleric, Ebrahim Raisi, who had the backing of the supreme leader, Ayatollah Ali Khamenei. Much like the French in their presidential elections, Iranians voted decisively against inward-looking politics.Though Raisi campaigned on a populist platform — tackling corruption, alleviating poverty, larger hand-outs for the poor — voters preferred Rouhani's record with the nuclear deal and promise of increased engagement with the world, ensuring accountability and domestic reform, and greater personal freedoms.A robust economy is crucial to make good on these promises.

A bigger voice for the moderates and reformists in the all-powerful Assembly of Experts would help. Iran's partners and the world can give Rouhani a helping hand and support Iran's political evolution.It is time for the US to lift its remaining sanctions on Iran, not try and renege on the nuclear deal. These will make it easier for banks and other financial institutions to back investments in the country. India, too, needs to sustain and extend support to President Rouhani. This means moving ahead with its investments in Iran, the most important and immediate being the Chahabar port and the transport-trade linkages with the Central Asian republics, which would provide a logistical advance outside China's Belt and Road project.The economic and strategic benefits that will accrue to Iran, India, Central Asian republics and Russia would be considerable, to the chagrin of Pakistan and China. That is an added reason for the US to cooperate in Iran's economic rebuilding.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-05-17

जलवायु परिवर्तन की नई चुनौतियां

जरूरत आन पड़ी है कि विश्व समुदाय जलवायु परिवर्तन पर अमेरिकी धृष्टता का जवाब पेरिस सम्मेलन की अपनी प्रतिबद्धता में और अधिक इजाफा करके दे। विस्तार से जानकारी दे रहे हैं नितिन देसाई

अमेरिका के डॉनल्ड ट्रंप प्रशासन ने संकेत दिया है कि वह पेरिस में 2015 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन समझौते में जताई गई प्रतिबद्धताओं से पीछे हट सकता है। यह बात मायने रखती है क्योंकि अमेरिका वैश्विक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में 14 फीसदी का जिम्मेदार है। अमेरिका का इस समझौते से पीछे हटना अन्य देशों को भी इसके लिए प्रोत्साहित कर सकता है। पेरिस समझौते में उत्सर्जन कटौती के लिए जताई गई प्रतिबद्धता से किसी भी तरह का विचलन बहुत विनाशकारी साबित हो सकता है। इस समझौते के मूल में यह बात है कि वैश्विक औसत तापमान वृद्धि को औद्योगिक युग के पूर्व के स्तर से अधिकतम दो फीसदी ज्यादा पर सीमित रखा जाए। इस लक्ष्य पर टिके रहने की 66

फीसदी संभावना इस बात पर निर्भर करती है कि सन 2030 तक कार्बन उत्सर्जन को 42 गीगाटन पर सीमित किया जाए और सन 2075 के बाद उसे ऋणात्मक कर दिया जाए। ऐसा करके ही हम 1,000 गीगाटन की उस सीमा में रह पाएंगे जिसका 80 फीसदी 2030 तक इस्तेमाल होना है। समझौते में जिस 1.5 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी की कामना की गई है वह बरकरार रहेगी और उम्मीद यही है कि हम एक दशक में उसे पार कर जाएं। पेरिस समझौते के तहत जो प्रतिबद्धताएं जताई गईं वे 2030 तक की अवधि में इस लागत बचाने वाली राह में 12 से 14 गीगाटन तक पिछड़ जाएंगी। इतना ही नहीं फिलहाल कुछ ही देश ऐसे हैं जो अपनी प्रतिबद्धताएं पूरी करने की राह पर अग्रसर हैं। यूएनईपी की उत्सर्जन अंतराल संबंधी रिपोर्ट में कहा गया है कि जी 20 देशों में से जो उत्सर्जन के अधिकांश हिस्से के लिए जिम्मेदार हैं, केवल यूरोपीय संघ, भारत और चीन ही लक्ष्यों के अनुरूप चल रहे हैं। जबकि शेष को इसके लिए नीतिगत कदमों की आवश्यकता होगी। परेशान करने वाली बात यह है कि हाल के कुछ वैज्ञानिक कार्य बताते हैं कि दो डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी का लक्ष्य अपने आप में बहुत ज्यादा है जो कई बड़े जोखिमों से बचाव नहीं कर पाएगा। प्रतिष्ठिांत जलवायु वैज्ञानिक जेम्स हानसेन और उनके सहयोगियों का कहना है कि औद्योगिक युग के पूर्व के स्तर में दो डिग्री सेल्सियस की यह वृद्धि आने वाले दिनों में बहुत खतरनाक साबित हो सकती है। हकीकत में उन्होंने अनुमान जताया कि वैश्विक तापवृद्धि समुद्र के ठंडे जल की सतह के नीचे गरम पानी को चपेट में ले लेगी और इससे बर्फ के पिघलने की गति और तेज हो जाएगी। इससे समुद्र प्रभावित होंगे और पूरी पृथ्वी इस घटना से बुरी तरह प्रभावित होगी।इस बात के तमाम प्रमाण हैं कि जलवायु परिवर्तन उम्मीद से कहीं तेज गति से घटित हो रहा है। फरवरी 2015 से फरवरी 2016 के बीच औसत कार्बन डाइ ऑक्साइड घनत्व 3.76 पार्ट प्रति मिलियन था। हवाई की माउना लोआ वेधशाला के मुताबिक यह एक साल में हुई सबसे अधिक वृद्धि थी। यह स्तर 400 पीपीएम से अधिक है और अब इसमें गिरावट आने की संभावना नहीं नजर आती है। ऐसे में 2030 तक ही दो डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे। अमेरिका और ब्रिटेन के एक शोध के मुताबिक वर्ष 1998 से 2014 के बीच वैश्विक तापमान में बढ़ोतरी में ठहराव की खबर गलत थी।

अमेरिकन मीटिअरलॉजिकल सोसाइटी ने वर्ष 2011 से 2014 के बीच जो बुलेटिन प्रकाशित किए उनमें से आधी से अधिक के मुताबिक मानव जनित जलवायु परिवर्तन के लिए अतिरंजित घटनाएं जिम्मेदार थीं। बीते तीन दशक के दौरान आर्कटिक में समुद्री बर्फ का दायरा आधा से अधिक घटा है। आर्कटिक 2070 के बजाय 2040 तक ही समुद्री बर्फ से रहित हो जाएगा। भारतीय मौसम विभाग का कहना है कि भारत पिछली सदी की तुलना में औसतन 0.60 डिग्री सेल्सियस गरम है। वर्ष 2015 तक देश के सबसे गरम 15 सालों में से 13 वर्ष 2000 के बाद के थे। वहीं 2016 सन 1901 के बाद सबसे गरम वर्ष था। गरम हवाओं की घटनाएं और उनकी तीव्रता और आवृत्ति बढ़ती जा रही है। ऐसे में विश्व समुदाय के समक्ष चुनौती यह है कि एक ओर तो वह अमेरिकी व्यवहार से निपटे और दूसरी ओर पेरिस समझौते से इतर भी जलवायु परिवर्तन से निपटने की गतिविधियां तेज करे। ट्रंप को लगता है कि बाजार में मोलभाव करने वालों की तरह अगर वह पेरिस समझौते से दूरी बनाएंगे तो लोग उनके पीछे आएंगे और रियायत की पेशकश करेंगे। ऐसा करने की जरूरत नहीं है। अगर अमेरिका के साथ कोई रियायत हुई तो यह पेरिस प्रतिबद्धता को कमजोर करेगा। ऐसा नहीं है कि ट्रंप के बिना काम बिगड़ ही जाएगा। अमेरिका फिर भी योगदान करेगा। कैलिफोर्निया जैसे प्रांत जलवायु परिवर्तन योजना में काफी आगे हैं और उन्होंने स्वैच्छिक कार्ययोजना बनाई है जिसके आधार पर वे अहम उत्सर्जन कटौती करेंगे। अमेरिका में अहम तकनीक आधारित कारोबारी नवीकरणीय ऊर्जा, बिजली चालित वाहन और ऊर्जा किफायत के पक्ष में हैं। उन्होंने पहले ही पेरिस समझौते में अमेरिका के बने रहने को लेकर अपना समर्थन जारी कर दिया है। अमेरिकी पर्यावरण आंदोलन ने भी इसके लिए सख्त लॉबीइंग की। प्रशासनिक हलके में भी पेरिस समझौते के समर्थक हैं। यूरोपीय संघ के नेता और शी चिनफिंग ने अमेरिका को चेतावनी दी है कि वह ऐसा न करे। भारत इस मसले पर खामोश रहा है और उसे अवश्य बोलना चाहिए। इन नेताओं को अमेरिकी प्रशासन से इतर अन्य हलकों में

खुलकर जलवायु परिवर्तन की सकारात्मक पहलों को आगे बढ़ाना चाहिए। कारोबारी समूहों, शोध संस्थानों और पर्यावरण कार्यकर्ताओं को प्रेरित करना चाहिए कि वे अमेरिका में अपने साथियों से बात करें।ऐसा करना कठिन भी है और सरल भी। कठिन इसलिए क्योंकि जीवाश्म ईंधन वाले देश इसका विरोध करेंगे और आसान इसलिए क्योंकि इसके विकल्प बहुत तेजी से व्यावहारिक होते जा रहे हैं। इन्हें पूंजी भी मिल रही है और प्रतिभा भी। यूरोपीय संघ, चीन और भारत, तीनों देश अपनी प्रतिबद्धताओं को स्वैच्छिक रूप से बढ़ा सकते हैं। ऐसा करके वे नए चेतावनी संकेतों को लेकर बेहतर प्रतिक्रिया दे पाएंगे। जीवाश्म ईंधन उद्योग का अंत और नई नवीकरणीय ऊर्जा पर आधारित अर्थव्यवस्था के उदय के साथ परिवहन, शहरी डिजाइन और भवनों आदि में बदलाव आएगा। हमें भी इतिहास की इस धारा के साथ बहना चाहिए और अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप को पीछे छोड़ देना चाहिए।

Date: 22-05-17

कम होगी महंगाई?

देश में नई संघीय अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था को लेकर निर्णय करने वाली संस्था वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) परिषद की दो दिवसीय बैठक श्रीनगर में आयोजित की गई। इस बैठक में नई व्यवस्था के तहत अधिकांश कर दरें निर्धारित की गईं। कुछ विवादास्पद वस्तुओं मसलन सोना और कपड़ा आदि पर निर्णय आगामी बैठक में होगा जो जून के आरंभ में आयोजित की जाएगी। समय कम है क्योंकि सरकार इस बात को लेकर प्रतिबद्ध है कि जीएसटी को आगामी 1 जुलाई को पेश कर दिया जाएगा। ऐसे में इस मामले में हुई इतनी प्रगति काबिलेतारीफ है। पहली बार नई कर व्यवस्था को लेकर कुछ समझ नजर आ रही है।

सबसे अहम वृहद आर्थिक प्रश्न जिसका जवाब दिया जाना जरूरी है, वह है कीमतों पर जीएसटी का असर, शीर्ष मुद्रास्फीति दर और भविष्य में आरबीआईकी ब्याज दर निर्धारण प्रक्रिया पर जीएसटी का असर। कई वरिष्ठ अधिकारियों ने कहा है कि कई सेवाओं की कर दर जहां 15 से बढ़कर 18 फीसदी तक हो जाएगी, वहीं यह भी सच है कि उन सेवाओं के प्रावधान के अधीन उपभोग की गई वस्तुओं के व्यय के विरुद्ध ऋण लेने की क्षमता सिद्धांतत: प्रभावी कर दर को कम कर देगी। ऐसे में दरों में इजाफे के चलते मुद्रास्फीति में होने वाला कोई भी इजाफा सीमित होगा। आरबीआई मुद्रास्फीति के लक्ष्य तय करते समय खुदरा महंगाई के आंकड़ों को ध्यान में रखता है। ऐसे में जीएसटी की इसमें भी भूमिका होगी। नवनिर्धारित कर व्यवस्था में खुदरा महंगाई के कई अहम घटकों को कर रियायत दी जाएगी या उनकी दरों में कमी की जाएगी। उदाहरण के लिए खाद्यान्न, प्रमुख अन्न और दूध को जीएसटी से बाहर रखा गया है।

फिलहाल कई राज्य खाद्यान्न पर शुल्क लगाते हैं। चीनी, चाय और खाद्य तेल पर 5 फीसदी की दर से कर लगाया जाता है। कुलमिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि कर दरों के इस दायरे का चयन यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया है कि शीर्ष मुद्रास्फीति पर इसका असर कम ही रहे। हकीकत में अब कई लोगों को यह आशा है कि जीएसटी अल्प से मध्यम अवधि के दौरान मुद्रास्फीति में कमी लाने में सहायक साबित होगा। वित्त मंत्रालय के एक सचिव ने संकेत दिया कि मुद्रास्फीति में दो फीसदी तक की कमी आ सकती है।

हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि ऐसा कैसे होगा? पहले यह आशंका जताई जा रही थी कि जीएसटी के आगमन के बाद समायोजन अवधि के दौरान खुदरा महंगाई में इजाफा होगा। अगर कीमतों पर इसका असर वाकई कम रहता है तो आरबीआई के पास भी यह गुंजाइश होगी कि वह मुद्रास्फीति को लेकर अपने भविष्य के कदमों पर पुनर्विचार करे। इस प्रकार वह अपने मौजूदा मौद्रिक नीति संबंधी रुख पर भी नए सिरे से विचार कर सकता है।इस लिहाज से देखा जाए तो अपेक्षाकृत बेहतर वृहद-आर्थिक प्रभाव की संभावना की बड़ी कीमत चुकाई गई है। जीएसटी

परिषद की सराहना की जानी चाहिए कि उसने अधिकांश वस्तुओं को 12 से 18 फीसदी के दायरे में समेट दिया है। परंतु रियायती वस्तुओं समेत पांच स्तरीय कर ढांचा बेहद जटिल है। इसके क्रियान्वयन में समस्या हो सकती है और यह कानूनी पेच का सबब भी बन सकता है। सेवाओं की बात करें तो समान सेवाओं के लिए बहुस्तरीय कर व्यवस्था का अनुपालन किसी दु:स्वप्न से कम नहीं होगा। इससे कर अधिकारियों को भी यह अधिकार मिल जाएगा कि वे रिटर्न को लेकर विवेकाधिकार का इस्तेमाल करें। सरकार को इन क्रियान्वयन संबंधी दिक्कतों को दूर करने के लिए कई कदम उठाने होंगे। तभी यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि जीएसटी ढांचा 1 जुलाई से लागू करने के लिए तैयार है। इस बीच पूरा ध्यान उद्योग जगत की ओर है जिसके पास कर व्यवस्था में व्यापक बदलाव से निपटने के लिए कुछ सप्ताह का समय है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 21-05-17

रह गए रुहानी बच गया ईरान

ईरान में राष्ट्रपति का चुनाव सही मायनों में उदारता और धार्मिक कट्टरता के बीच जनमत संग्रह था। इसमें वहां के समझदार मतदाताओं ने धार्मिक कट्टरपंथी नेता इब्राहिम रईसी को नकारकर उदारवादी-सुधारवादी नेता हसन रुहानी को दोबारा सत्ता सौंप दिया है। वह अगले चार साल तक के लिए राष्ट्रपति बने रहेंगे। ईरानी समाज में उदारवादी विचार परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाला समूह घरेलू स्तर पर धार्मिक कट्टरपंथी नेता इब्राहिम रईसी के दकियानूसी विचारों और आग्रहों को लेकर सशंकित था, जिसमें मजहबी संस्थाओं को आगे बढ़ाने और समाज में महिलाओं के अधिकारों में कटौती करने के मुद्दे शामिल थे। समाज का एक उदारवादी तबका इस बात को शिद्दत से महसूस कर रहा था कि यदि रईसी को चुनाव में जीत हासिल होती तो तेहरान का समाज गत सदी के आठवें दशक के धार्मिक नेता अयातुल्ला खुमैनी के उस अंधकार युग में लौट सकता है, जहां इस्लाम के रूढ़िवादी परम्पराओं से शासन चलाया जाता था। ऐसा माना जाता है कि रईसी मौजूदा धार्मिक नेता खुमैनी के करीबी हैं। विदेशी मोर्चे पर रईसी पश्चिमी देशों के प्रति नरम रुख रखने के पक्षधर नहीं थे।ईरान की घरेलू और विदेशी दोनों मोर्चो पर ऐसे नेता की आवश्यकात थी, जो देश की अर्थव्यवस्था को तेजी से आगे बढ़ाने में पश्चिमी देशों के साथ अपने रिश्ते को बेहतर बनाये। इस मायने में हसन रुहानी की नीतियां अनुकूल हैं। उन्होंने अपने शासन के पहले कार्यकाल में पश्चिमी देशों के साथ परमाणु समझौता किया था। इसके बाद ईरान पर लगे प्रतिबंधों को पश्चिमी देशों ने हटा लिया था। लेकिन इसका असर ईरान की अर्थव्यवस्था पर पड़ा, जिसके कारण महंगाई और बेरोजगारी बढ़ी है। दूसरी ओर अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को ईरान का विरोधी माना जाता है। उन्होंने ओबामा के समय ईरान के साथ हुए समझौते को रद्द करने का संकेत भी दे चुके हैं। इस सप्ताह ट्रंप ईरान का दुश्मन समझे जाने वाला सऊदी अरब के दौरे पर जा रहे हैं, जिसका राजनीतिक अर्थ-संकेतों में समझा जा सकता है। चूंकि ईरानी राष्ट्रपति हसन रुहानी अमेरिका के प्रति आक्रामक रुख नहीं रखते। लिहाजा उम्मीद है कि परमाणु समझौते पर कोई सहमति बन जाए। भारत के साथ ईरानी राष्ट्रपति हसन रुहानी का निकट संबंध रहा है। उनका सत्ता में लौटना भारत के हित में है। जब पश्चिमी देशों ने ईरान पर आर्थिक प्रतिबंध लगाया था, तब भारत ने ईरान के प्रति अनुकूल रवैया अपनाया था। चीन की महत्त्वाकांक्षी परियोजना "वन बेल्ट, वन रोड' का बहिष्कार करने के बाद भारत को ईरान के साथ हुई चाबहार परियोजना समझौते को अमल में लाने के लिएतेजी लानी होगी। चाबहार बंदरगाह परियोजना से भारत चीन और पाकिस्तान दोनों की घेराबंदी से अपने को बाहर निकाल सकता है। रुहानी की कोशिश यही होगी कि भारत समय सीमा के अंदर इस परियोजना को पूरा करे। भारत की ऑयल और गैस नेचुरल कम्पनी और ईरान के बीच जो समझौता हुआ था, लेकिन ईरान की ओर से तेल की कीमतों में तीन गुना वृद्धि

किये जाने के कारण यह समझौता अभी तक अमल में नहीं आ पाया है। अब रुहानी से इसके अमल में आने की उम्मीद है।